आर. एस. सुजाता

बनाम

स्टेट ऑफ कनार्टक एवं अन्य

(दीवानी अपील संख्या 9579/2003)

नवम्बर 29, 2010

(पी. सदाशिवम एवं डॉ बी एस चौहान, जे.जे.)

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 धारा 2 (सी) - आपराधिक अवमानना- कमर्चारी ने अपने विरूद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अधिकरण के समक्ष आपत्ति प्रार्थना पत्र पेश किया। विरोधी पक्षकार ने इस आधार पर परिसीमा को विवाद उठाया कि कर्मचारी द्वारा इस आरोप पत्र को प्रारम्भिक स्तर पर पेश करना चाहिऐ था और इस सम्बन्ध में उसके द्वारा किये गये कथन झूठे है- अधिकरण ने मामला गुणागुण या परिसीमा पर निस्तारित करने के बजाय, यह धारित किया कि अपीलाथी झूँठी गवाही के साथ-साथ अधिकरण की आपराधिक अवमानना को भी दोषी था। अधिकरण के आदेेश को औचित्य-धारित किया कि- अधिकरण को परिसीमा के सम्बन्ध में विवाधक विरचित किया जाना चाहिये था और पक्षकारो को साक्ष्य पेश करने के लिए पूछना चाहिये था

और उसे गुणागुण पर निर्णित करना चाहिये था। मात्र विरोधी पक्षकार के अभिवचनों के आधार पर आपराधिक अवमानना की कायर्वाही शुरू करना पूर्णतया अनुचित और अनावश्यक था। अधिकरण यह समझने में विफल रहा कि आपराधिक अवमानना की कार्यवाही आपराधिक प्रकृति की होती है। किसी पक्षकार की और से गलती से अनजाने में या गलतफहमी में किये गये कार्य काे अवमानना नहीं समझना चाहिये। अधिकरण को इस तरह से समय-पूर्व प्रक्रम पर धारा 191, 193, 197 भा.दं.स. 1860 धारा 191,193 एवं 197- प्राकृतिक न्याय भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872, दृष्टांत (एफ) को संदर्भ लेते हुए अवमानना की कार्यवाही शुरू नहीं करनी चाहिये थी।

न्यायालय अवमानना नियम, 1992 और 7,13,15 आपराधिक अवमानना - न्यायालय/अधिकरण की आपराधिक अवमानना की कार्यवाही शुरू करने की शक्ति-क्षेत्र/संभावना/विषय- धारितः अवमानना की कार्यवाही में, न्यायालय/अधिकरण आरोप लगाने वाला व्यक्ति होने के साथ-साथ आरोप का न्यायाधीश भी होता है।

इसलिए न्यायालय/अधिकरण को बहुत सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता है। कार्यवाही अर्ध आपराधिक प्रकृति का होने से सबूत को भार और मानक वैसे ही अपेक्षित है, जैसे आपराधिक मामलाेंं में अपेक्षित होते है। इस उद्देश्य के लिए बनाये गये वैधानिक नियमों के अनुसार आरोप

विरचित किये जाने चाहिऐ और संदेेह से परे साबित किया जाना चाहिये और अवमानना की कार्यवाही न्यायालय द्वारा अपवादिक परिस्थितियों में शुरू की जानी चाहिये, जहाँ न्यायालय की राय हो कि किसी पक्षकार द्वारा जानबूझकर न्यायालय से कुछ लाभकारी आदेेश प्राप्त करने के लिए झूठी गवाही दी गई है। वर्तमान मामले में, आपराधिक अवमानना का मामला अलग से ना तो दर्ज किया गया और ना ही सांख्यिक। अधिकरण द्वारा आरोप विरचित नहीं किये गये इसलिए, अवमानना कार्यवाही बिल्कुल भी नियमों के अनुरूप नहीं की गई थी। न्यायालय अवमान अधि.-1971, प्राकृतिक न्याय।

साक्ष्य अधि., 1872- धारा 114, दृष्टांत (एफ) - धारितः जब कोई दस्तावेज रजिस्टर्ड डाक के द्वारा भेजा जाता है तब सामान्य खण्ड अधि. 1897 की धारा 27 के प्रावधान और अधि. की धारा 114 के दृष्टान्त (एफ) के अनुसार यह उपधारणा की जावेगी कि वह दस्तावेज प्राप्तकर्त्ता द्वारा प्राप्त कर लिया गया है। लेकिन यह उपधारणा खण्डनीय है- न्यायालय अवसान अधि.,1971- साधारण खण्ड अधि., 1897- धारा 27

कुछ अनियमितताऐं बरतने के कारण अपीलार्थी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, अपीलार्थी ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष आरोप ज्ञापन दिनांक 30-11-1999 एवं परिमाणिक

कार्यवाही को रद्द करवाने के लिए दिनांक 05-08-2002 को आपत्ति प्रार्थना पत्र पेश किया। उसने विलम्ब को माफ करने हेतु प्रार्थना पत्र भी पेश किया। प्रार्थना पत्र में, अपीलार्थी ने विशिष्ट अभिकथन किये कि आरोप ज्ञापन उसे दिनांक 19-06-2002 को प्राप्त हुआ। जब जाँच अधिकारी द्वारा उसकी प्रति उसे दी गई। प्रत्यर्थी ने जवाब दिया कि आदेश दिनांक 02-12-1999 को पावती सहित रजिस्टर्ड डाक द्वारा जारी किया गया था। प्रकरण गुणागुण और परिसीमा के विवाधक पर निर्धारित करने के बजाय धारित किया कि अपीलार्थी ने आपराधिक अवमानना कारित की है और दिनांक 15-11-2002 को हेतुक दर्शित करने का नोटिस दिया। अपीलार्थी ने हेतुक दर्शित करने बाबत नोटिस का जवाब प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया कि उसने विलम्ब को माफ करने का आदेश प्राप्त करने के प्रायोजन से कोई मिथ्या कथन नहीं किये, बल्कि आरोप ज्ञापन दिनांक 30-11-1999 उसे पहली बार 19-06-2002 को दिया गया।

उसने अपने मामले को साबित करने के लिए कुछ सरकारी रिकोर्ड तलब करने को भी अनुरोध किया। अधिकरण ने प्रत्यर्थी अधिकारियों को दस्तावेज अर्थात (आवक) आन्तरिक रजिस्टर, पावती सहित डाक और अन्य सुसंगत दस्तावेज पेश करने का निर्देश दिया। दिनांक 12-12-2002 को प्रत्यर्थी अधिकारियों ने कुछ फोटो प्रतिया पेश की, लेकिन उन्होंने

अपेक्षित दस्तावेज पेश नहीं किये। मामला 19-12-2002 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। अधिकरण ने दिनांक 19-12-2002 को आक्षेपित आदेेश पारित करते हुए धारित किया कि अपीलार्थी मिथ्या साक्ष्य के साथ ही साथ अधिकरण की आपराधिक अवमानना का भी दोषी था। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की। जो खारिज हो गई। उच्च न्यायालय के आदेेश को चुनौती देेते हुए वर्तमान अपील दायर की गई।

अपील स्वीकार करते हुए,

अभिनिर्धरित: **1.1** न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा अधिकरण के समक्ष संस्थित मामले में कोई निर्णय नहीं दिया अवधारित किया कि अपीलार्थी ने अधिकरण के समक्ष अपने विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करने के लिए निवेदन किया, और विरोधी पक्षकार ने परिसीमा के बिन्दु को विवाद उठाया कि उसको आरोप को ज्ञापन यथाशीघ्र अवसर पर देे दिया गया था और अपीलार्थी द्वारा इस सम्बन्ध में किये गये अभिकथन झूठे थे। अधिकरण को परिसीमा के सम्बन्ध में विवाधक विरचित किया जाना चाहिये था और पक्षकारो को साक्ष्य पेश करने के लिए पूछना चाहिये था और उसे गुणावगुण पर निर्णित करना चाहिये था। विरोधी पक्षकार द्वारा किये गये अभिकथनों के आधार पर आपराधिक

अवमानना की कार्यवाही शुरू करना पूर्णतया अनुचित और अनावश्यक था। अधिकरण के समक्ष मामला प्राम्भिक स्तर पर था

एस.सी.आर. और इसे इस तरह समय-पूर्व प्रक्रम पर धारा 191,193,197 भा. द. स. [पैरा 6,8] [235-एफ-ऐच; 230-एफ-जी] को संदर्भ लेते हुए आपराधिक अवमानना की कार्यवाही शुरू नहीं करनी चाहिये थी।

छाजू राम बनाम राधेश्याम और अन्य एआइआर, 1971 एससी 1367, चन्द्रपाल सिंह व अन्य बनाम महाराज सिंह व अन्य एआइआर 1982 एससी 1238, प्रीतिश बनाम स्टेट औफ महाराष्ट्र व अन्य एआइआर, 2002 एससी 236,

टी. सुधाकर प्रसाद बनाम आन्ध्र प्रदेेश सरकार व अन्य (2001) 1 एसएससी 516, चन्द्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा (1995) 1 एसएससी 421-

1.2 न्यायालय द्वारा जाँच/ अवमानना कार्यवाही अपवादिक दशाओं में शुरू करनी चाहिये थी जहाँ न्यायालय की राय हो कि पक्षकार द्वारा जानबूझकर न्यायालय से कुछ लाभकारी आदेेश प्राप्त करने के प्रयोजन से मिथ्या साक्ष्य दी गई। ऐसी कार्यवाही शुरू करने के लिए सन्देेह और अनुमान से परे प्रकृति के आधार हाेने चाहिये। ऐसे व्यक्ति द्वारा अपराध

किये जाने को स्पष्ट साक्ष्य होना चाहिये। क्याेंकि मात्र सन्देेह के आधार पर मिथ्या साक्ष्य देेने को आरोप नहीं लगाया जा सकता। इसके अलावा न्यायालय को तथ्यों के आधार पर यह भी निर्धारित करना होगा कि क्या न्याय के हित में उस अपराध की जाँच करना समीचीन है, जो किया गया प्रतीत होता है। वर्तमान मामले में, अधिकरण द्वारा तलब किये गये सभी दस्तावेज उसके समक्ष पेश नहीं किये गये। इसके अलावा, रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजा गया कोई भी दस्तावेज सामान्य खण्ड अधि. 1897 की धारा 27 के प्रावधानों और साक्ष्य अधि. 1872 की धारा 114 के दृष्टांत (एफ) के अन्तर्गत प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त किया उपधारित किया जावेगा। लेकिन प्रत्येक उपधारणा खण्डनीय है। इन तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी को उपधारणा खण्डित करने और यह साबित करने के लिए साक्ष्य पेश करने को समय दिया जाना चाहिये था कि उसे उक्त दस्तावेज प्राप्त नहीं हुए, जैसा कि विराेधी पक्षकार द्वारा आरोप लगाया गया था। अधिकरण ने अत्यधिक जल्दबाजी में कार्यवाही की।

आर.एस. सुजाता बनाम स्टेट औफ कर्नाटक एवं अन्य 231क्या उक्त कार्यवाही शुरू करने के लिए दिनांक 15-11-2002 को हेतुक दर्शित करने को नोटिस जारी किया गया था, अधिकरण ने इसके लिए 12-12-2002 की तारिख तय की और दिनांक 19-12-2002 को मामले को निस्तारण कर

दिया। अधिकरण यह समझने में विफल रहा कि आपराधिक अवमानना की कार्यवाही आपराधिक प्रकृति की होती है, और किसी पक्षकार की और से गलती, अनजाने या गलतफहमी से की गई कोई भी कार्यवाही अवमानना की श्रेणी में नहीं आती। अवमानना कार्यवाही में, न्यायालय आरोप लगाए जाने के साथ-साथ आरोप के न्यायाधीश भी होते है। इसलिए अधिकरण को निर्णय की जहाँ तक संभव हो, त्रुटियों के लिए सभी छुट देेते हुए, बडी सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता थी। कार्यवाही अर्द्ध आपराधिक प्रकृति की होने के कारण सबूत का भार और मानक वैसे ही अपेक्षित है, जैसे आपराधिक मामलों में अपेक्षित होते है। इस प्रयोजन के लिए बनाऐ गऐ वैधानिक नियमों के अनुसार आरोप विरचित किये जाने चाहिये और यह ध्यान में रखते हुए सन्देेह से परे साबित किये जाने चाहिये कि कथित अवमाननाकर्त्ता सन्देेह के लाभ का हकदार है। विधि केवल सम्भावनाओं के आधार पर अवमानना कार्यवाही में कोई सजा देेने की अनुमति नहीं देेती। न्यायालय बिना किसी आधार के केवल अनुमानों और धारणाओं के आधार पर कथित अवमाननाकर्त्ता को दण्डित नहीं कर सकती। (पैरा 12-15) (238 जी.एच., 289 ए.एच., 240- ए-सी)

हरिहर बनर्जी, बनाम रामशशी रॉय, ए आई आर 1918 पी सी 102; गुजरात विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम आत्माराम सुगोमल पोस्टानी ए आई

आर 1989 एस सी 1433; शिमला विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम संतोष शर्मा (श्रीमती) और अन्य। (1997) 2 एस सी सी 637; (डॉ. सुनील कुमार शंभुदयाल गुप्ता और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य जे टी 2010 (12) एस सी 287; सहदेेव उर्फ सहदेेव सिंह बनाम उत्तर प्रदेेश राज्य और अन्यः (2010) 3 एस सी सी 705; ऐल पी मिश्रा (डॉ) बनाम उत्तर प्रदेेश राज्य ए आई आर 1998 एस सी 3337; थ्री चीयर्स ऐंटरटेनमेंट प्रा लिमिटेड बनाम सी ई एस सी लिमिटेड ए आई आर 2009 एस सी 735- निर्भर किया।

2. वर्तमान मामले में, स्वीकृत रूप से, न्यायालय अवमानना नियम 1992 के तहत विहित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। न तो आपराधिक अवमानना का मामला दर्ज किया गया और न ही अलग से संख्याकित किया गया।

232 उच्चतम न्यायालय रिपोर्टस [2010] 14 (ऐडीडीऐल.) एस.सी.आर. जैसा कि नियमों के तहत आज्ञापक रूप से अपेक्षित था अधिकरण द्वारा उस प्रकार से आरोप विरचित नहीं किये गये। इस प्रकार अपीलार्थी को इसकी प्रति उपलब्ध कराने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए अवमानना की कार्यवाही बिल्कुल भी उक्त नियमों के अनुरूप सम्पन्न नहीं हुई। [पैरा 19 242 डी-ई]

मामला कानून संदर्भः

(2001) 1 एस सी सी 516	संदर्भित किया गया	पैरा 3
(1995) 1 एस सी सी 421	संदर्भित किया गया	पैरा 7
आई आर 1971 एस सी 1367	निर्भर किया	पैरा 9
ए आई आर 1982 एस सी 1238	निर्भर किया	पैरा 10
ए आई आर 2002 एस सी 236	निर्भर किया	पैरा 11
ए आई आर 1918 पी सी 102	निर्भर किया	पैरा 13
ए आई आर 1989 एस सी 1433	निर्भर किया	पैरा 13
(1997) 2 एस सी सी 637	निर्भर किया	पैरा 13
जेटी 2010 (12) एस सी 287	निर्भर किया	पैरा 13
(2010) 3 एस सी सी 705	निर्भर किया	पैरा 15
ए आई आर 1998 एससी 3337	निर्भर किया	पैरा 16
ए आई आर 2009 एस सी 735	निर्भर किया	पैरा 17

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकारः दीवानी अपील सं. 9579/2003

आपत्ति प्रार्थना पत्र संख्या 715 of 2002 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, बैंगलोर के निर्णय एवं आदेश दिनांक 19-12-2002 से

अपीलार्थी की ओर से राजेश महाले।

प्रत्यर्थी की ओर से संजय और हेगड़े।

न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

डॉ. बी. एस. चौहान, जे.

1. यह अपील केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण बैंगलोर, बैंच बैंगलोर (इसके बाद इसे अधिकरण कहा जायेगा) के मूल आवेदन संख्या 715/ 2002 में पारित निर्णय और आदेेश दिनांक 19-12-2002 के विरुद्ध दायर की गई थी।

2. (अ) जिन तथ्यों और परिस्थितियाँ में यह मामला उत्पन्न हुआ वो यह है कि कर्नाटक राज्य ने दिनांक 24-1-2001 के आदेेश के तहत अपीलार्थी, एक भारतीय कर्नाटक कैडर के प्रशासनिक सेवा के अधिकारी पर यह आरोप लगाते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की कि उसने मेसर्स नंदी ऐग्रो इंडस्ट्रीज लिमिटेड नामक आपूर्तिकर्ता को सार्वजनिक वितरण प्रणाली दरों पर भारत सरकार के राज्य वित्त पोषित गेहूं आधारित पोषण कार्यक्रम नामक एक विशेष कार्यक्रम के तहत गेहूं के आवंटन में कुछ अनियमितताएँ की है। उक्त नियमित जाँच प्राम्भिक जाँच रिपोर्ट दिनांक 31-03-1997 के आधार पर शुरू की गई थी।

(ब) अपीलार्थी ने आरोप दिनांक 30-11-1999 के अनुच्छेदों और उसके परिणामस्वरूप की कार्यवाहियों को विविध आधारो पर रद्द करवाने के लिए अधिकरण के समक्ष दिनांक 05-08-2022 को आपत्ति प्रार्थना पत्र संख्या 715 of 2002 पेश किया। उक्त मूल प्रार्थना पत्र (जिसे इसके पश्चात औ ऐ के रूप में संदर्भित किया जायेगा) में अपीलार्थी ने विशिष्ट अभिकथन किऐ कि आरोप ज्ञापन दिनांक 30-11-1999 उसे 19-6-2002 को प्राप्त हुआ था क्योंकि उसी की प्रति प्रतिवादी संख्या तीन यानि जाँच अधिकारी को दी गई थी। इसलिए अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया था कि वह परिसीमा अवधि के भीतर न्यायाधिकरण के समक्ष पहुँच गई थी। हालांकि बहुत सावधानी बरतते हुए उसने विलम्ब को माफ करने के लिए एक आवेदन भी दायर किया था।

(स) उक्त आवेदन को जवाब प्रत्यर्थी द्वारा 18-10-2002 को पेश किया गया था। जिसमें यह तर्क दिया गया था कि आदेेश दिनांकित 30-11-1999 अपीलार्थी को दिनांक 2-12-1999 को पावती सहित रजिस्टर्ड डाक द्वारा जारी किया गया था।

(द) अधिकरण ने मामले में गुणागुण पर कार्यवाही करने या परिसीमा के विवाधक को निर्धारित करने के बजाऐ आदेेश दिनांक 15-12-2002 को यह कथन करते हुए पारित किया कि अपीलार्थी ने अपने आपत्ति

प्रार्थना पत्र में परीसीमा के संदर्भ में सआशय और जानबूझकर मिथ्या कथन किऐ थे। इसलिए प्रथम दृष्टया अधिकरण को विचार था कि अपीलार्थी ने आपराधिक अवमानना कारित की थी और अपीलार्थी को 15-11-2002 को हेतुक दर्शित करने का नोटिस जारी किया गया था। जिसमें अपीलार्थी को दिनांक 29-11-2002 को सुबह साढे दस बजे जिस दिन मामला सुनवाई के लिए नियत किया गया था अधिकरण के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर उक्त हेतुक दर्शित नोटिस को जवाब देेने के लिए कहा गया था।

(य) अपीलार्थी न केवल उक्त नोटिस के जवाब में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुई बल्कि उक्त हेतुक दर्शित नोटिस को जवाब पेश करते हुए तर्क किया कि उसने विलम्ब माफी के आदेेश को सुरक्षित करने के उद्देश्य से कोई मिथ्या कथन नहीं किऐ और वास्तव में आरोप ज्ञापन 30-11-1999 उसे पहली बार 19-6-2002 को दिया गया था। उसने अपने मामले को साबित करने के लिए कुछ सरकारी अभिलेख तलब करने को भी अनुतोष चाहा।

(र) अधिकरण ने प्रत्यर्थी अधिकारियों को दस्तावेज यानि आवक रजिस्टर पावती सहित डाक और मूल पत्र दिनांक 23-12-1999 और अन्य सुसंगत दस्तावेज यदि कोई हो, को पेश करने का आदेेश दिया। जो कि

मामले में अगली पेशी तक प्रभावी रहेगा। और मामला दिनांक 12-12-2002 को नियत करने हेतु निर्देशित किया गया।

(ल) दिनांक 12-12-2002 को हालांकि प्रत्यर्थी अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता ने आपेक्षित दस्तावेजों में से कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया। लेकिन उन्होंने पत्र दिनांकित 23-12-1999 और आवक रजिस्टर की फोटोप्रतियाँ प्रस्तुत की। अधिकरण ने मामला 19-12-2002 तक के लिए स्थगित कर दिया। अधिकरण ने दिनांक 19-12-2002 को विवादित आदेश पारित किया जिसमें कहा गया था कि अपीलार्थी मिथ्या साक्ष्य के साथ साथ अधिकरण की आपराधिक अवमानना का भी दोषी था और न्यायालय उठने तक कारावास की सजा और 2000 रुपये का जुर्माना अधिरोपित किया।

3. व्यथित होकर अपीलार्थी ने रिट याचिका दायर करते हुए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। जिसे अंततः दिनांक 02-09-2003 के विस्तृत आदेश के तहत खारिज कर दिया गया। यह अवलोकन किया गया कि टी. सुधाकर प्रसाद बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार और अन्य 2001 1 एस- सी- सी- 516 में पारित निर्णय पर निर्भर करते हुए उच्च न्यायालय के पास इस मामले पर सुनवाई करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। जिसमें यह माना गया कि अधिकरण द्वारा न्यायालय अवमानना

अधिनियम 1971 के अधिन पारित आदेेश के खिलाफ व्यथित पक्षकार ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, इसलिए यह अपील की गई।

4. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश महाले ने तर्क प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेेश न केवल प्राकृतिक न्याय के सिदे्धांतों का बल्कि न्यायालय की अवमानना (CAT) नियम 1992 (जिसे इसके पश्चात 1992 के नियम कहा जाऐगा) के रूप में जाने जाने वाले वैधानिक नियमों का भी घोर उल्लंघन करते हुए पारित किया गया और अपीलार्थी को अपनी प्रतिरक्षा करने को उचित अवसर नहीं दिया गया। अधिकरण ने अपीलार्थी द्वारा दायर मूल आवेदन को निर्धारित नहीं किया। अधिकरण ने अपीलार्थी द्वारा पेश किऐ गऐ तर्को में से एक को झूठा मानते हुए उठाया और आपराधिक अवमानना कार्यवाही शुरू की। जो कि विधि में अनुमत नहीं है। अतः आक्षेपित आदेेश निरस्त किऐ जाने योग्य है।

5. अपील का विरोध करने वाला कोई नहीं है। हमने विद्वान अधिवक्ता अपीलार्थी द्वारा पेश किऐ तर्को पर विचार किया।

6. उपरोक्त वर्णित तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि अधिकरण ने अपीलार्थी द्वारा दायर मामले पर बिल्कुल भी निर्णय नहीं दिया है। अपीलार्थी ने अपने विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अधिकरण का दरवाजा खटखटाया और विरोधी पक्षकारान ने

परीसीमा का विवाद उठाया कि उसे आरोप के अनुच्छेद शीघ्रतम अवसर पर जारी कर दिऐ गऐ थे और अपीलार्थी द्वारा इस सम्बन्ध में किऐ गऐ अभिकथन मिथ्या है। अधिकरण को परीसीमा के सम्बंध में विवाधक विरचित करना चाहिये था और पक्षकारो को साक्ष्य पेश करने के लिए कहना चाहिये था और उसे गुणागुण पर निर्धारित करना चाहिये था। मात्र विरोधी पक्षकार द्वारा किये गये अभिकथनों के आधार पर इसमें आपराधिक अवमानना की कार्यवाही शुरू करना पूरी तरह से अनुचित और अनावश्यक था। आपराधिक अवमानना को न्यायालय अवमान अधिनयम 1971 की धारा 2 सी के तहत परिभाषित किया गया है। जो निम्नानुसार हैः

"(सी) "न्यायालय अवमान" का अर्थ है किसी भी मामले का प्रकाशन (चाहे शब्दों द्वारा, मौखिक या लिखित या संकेतो द्वारा, दृश्यरूपेण द्वारा या अन्यथा) या कोई अन्य कार्य करना जो कि

(I) निंदा करना या निंदा करने की प्रवृत्ति रखना या किसी न्यायालय के अधिकार को कम करने की प्रवृत्ति रखना; या

(II) किसी न्यायिक कार्यवाही के सम्यक निष्पादन में पूर्वाग्रह रखना या हस्तक्षेप करना या हस्तक्षेप करने की प्रवृति रखना; या

(III) किसी भी तरीके से न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करना, हस्तक्षेप करने की प्रवृति रखना या बाधा डालने की प्रवृति."

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त उल्लेखित प्रावधानों में से कोई भी इस मामले के तथ्यों में शामिल नहीं था।

7. विद्वान न्यायाधिकरण ने इस आधार पर कार्यवाही शुरू की कि चन्द्र शशि बनाम अनिल कुमार वर्मा, (1995) 1 एससीसी 421, में न्यायालय ने निर्धारित किया कि किसी को भी न्यायिक कार्यवाही में मिथ्या साक्ष्य देेने, वाग्छल पूर्ण और झूठ को प्रेरित करने वाले कृत्य करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये और यदि ऐसा कोई करता है, तो उससे उचित तरीके से निपटा जाना चाहिये। यदि किसी मामले में मिथ्या दलील का सहारा किसी परोक्ष उद्देश्य से लिया जाता है, तो वह निश्चित रूप से न्याय के प्रवाह में बाधा उत्पन्न करेगा और न्यायालयों को अपने विधिक कर्त्तव्यों को पालन करने से रोकेगा।

8. न्यायाधिकरण के समक्ष, यह मामला प्रारंभिक चरण में था, इसलिए न्यायाधिकरण को भारतीय दंेड संहिता 1860 (जिसे बाद में आई पी सी कहा जायेगा) की धारा 191, 193 और 197 के प्रावधानों के संदर्भ देते हुए समय-पूर्व प्रक्रम स्तर पर आपराधिक अवमान की कार्यवाही शुरू नहीं करनी चाहिये थी। धारा 191 आई पी सी मिथ्या साक्ष्य देेने से संबंधित है; धारा 193 मिथ्या साक्ष्य देेने के लिये दण्ड को प्रावधान करती

है; धारा 197 गलत प्रमाण पत्र जारी करने या हस्ताक्षर करने से संबंधित है।

9. छाजू राम बनाम राधे श्याम और अन्य ए आई आर 1971 एस सी 1367, इस न्यायालय द्वारा समान विवाधक पर निपटारा करते हुए निम्नानुसार निर्धारित किया किः

"---------- इसमें कोई संदेह नहीं है कि मिथ्या साक्ष्य देेना और मिथ्या शपथ पत्र प्रस्तुत करना एक बुराई है जिसे प्रभावी ढंग से मजबूत हाथो से रोका जाना चाहिये, लेकिन बिना उचित सावधानी और सर्तकता के और अनिर्णायक और संदिग्ध तत्वों पर बहुत ही सहजता से और बार बार मिथ्या साक्ष्य देेने के लिए अभियोग लगाना इसके मूल उद्देश्य को विफल कर देेता है। अभियोजन को आदेश तब दिया जाना चाहिये जब अपराधी को दण्डित करना न्याय के हित में समीचिन समझा जावे और केवल मात्र इसलिए नहीं कि दिऐ गऐ बयानों में कुछ अशुद्घता है जो निर्दोष या सारहीन हो सकते है। किसी ठोस मामले पर प्रथम दृष्टया जान बूझकर मिथ्या बोलने को मामला होना चाहिये और न्यायालय का समाधान होना चाहिये कि आरोप के लिए समूचित आधार है----------।"

10. चन्द्रपाल सिंह एवं अन्य बनाम महाराज सिंह आर अन्य ए आई

आर 1982 एस सी 1238 में इस न्यायालय ने धारा 193 और 199 भारतीय दण्ड संहिता के प्रायोजनाेंं के लिए एक मिथ्या साक्ष्य के मामले को निस्तारण करते हुए निम्नानुसार अवधारित कियाः

"---------- जब यह आरोप लगाया जाता है कि एक घोषणा में मिथ्या साक्ष्य दिया गया है जो किसी भी न्यायालय में या किसी लोक सेवक या व्यक्ति के समक्ष साक्ष्य के रूप में ग्रहण किया गया हो, तो कथित तौर पर साक्ष्य मिथ्या दिया गया माना जाये और किसी दस्तावेज की सत्यता को इंगित करते हुए इसे कथित रूप से मिथ्या बताया जाना चाहिये, इस बिन्दु की और ध्यान आकर्षित करते हुए कि दो स्थितियाँ सहअस्तित्व में नहीं रह सकती, दोनों एक ही व्यक्ति के लिए जिम्मेदार होगा और इसलिए, उसकी जानकारी में एक झूठी होनी चाहिये। सबूत को भार के संदर्भ में न्यायालय द्वारा स्वीकार या अस्वीकार किये गये शपथ पत्रों में दिये गये विरोधाभासी तर्क धारा 199 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तगर्त आरोप के लिये आधार प्रदान नहीं करते। साक्ष्य को स्वीकार करना या अस्वीकार करना अपने आप में अस्वीकार किये गये साक्ष्य को मिथ्या करार देने के लिए पर्याप्त मापदण्ड नहीं है। मिथ्या साक्ष्य को आरोप तब लगाया जा सकता है जब सत्यता स्पष्ट रूप से सामने आ जाऐ और मिथ्या साक्ष्य देने वाले व्यक्ति को इसकी जानकारी नहीं हो। न्यायालय में

बार बार गवाहो के समूह द्वारा दिऐ गऐ कथनों को स्वीकार कर लिया जाता है और प्रतिवाद को अस्वीकार कर दिया जाता है। गवाहो के एक समूह द्वारा दिये गये कथनों को स्वीकार कर लिया जाता है और प्रतिकथनों को खारिज कर दिया जाता है। यदि ऐसे सभी मामलों में धारा 199 भा.द.स. के अन्तगर्त शिकायत दर्ज की जायेगी तो न केवल मुकदमेबाजी की बाढ आ जायेगी बल्कि यह निस्न्देेह अदालत की प्रक्रिया को दुरूपयोग होगा।"

11. प्रीतीश बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य ए आई आर 2002 एस सी 236 मामले में, इस न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 340 के प्रावधानों पर व्यापक रूप से विचार किया, इस मामले में जहाँ मुआवजे की अधिक राशि प्राप्त करने के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 18 के सन्दर्भ में जाली दस्तावेज पेश किये गये, न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी कीः-

> "उपधारा को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रावधान को उद्देश्य न्यायालय (जिसके समक्ष कार्यवाही होनी थी) द्वारा एक राय बनानी है कि न्याय के हित में उस अपराध की जाँच करना समीचीन है जो किया गया प्रतीत होता है कि अपराध किया गया है..... लेकिन एक बार जब न्यायालय ऐसा करने को निर्णय ले लेता है, तो न्यायालय को इस आशय

का निष्कर्ष निकालना चाहिऐ कि तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्याय के हित में यह समीचीन है कि अपराध की आगे जाँच की जानी चाहिऐ..... यह फिर से याद रखना चाहिऐ कि उक्त धारा में विचार की गई प्रारंभिक जाँच यह पता लगाने के लिए नहीं है कि कोई विशेष व्यक्ति दोषी है या नहीं। इससे कोसाे दूर, प्रारंभिक जाँच को उद्देश्य, भले ही न्यायालय इसे संचालित करने को विकल्प चुनती है, उसे केवल यह तय करना है कि क्या न्याय के हित में उस अपराध की जाँच करना समीचीन है जो किया गया प्रतीत होता है।"

12. इस प्रकार, उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि न्यायालय द्वारा असाधारण परिस्थितियों में जाँच/अवमानना की कार्यवाही शुरू की जानी चाहिऐ, जहाँ न्यायालय की राय है कि किसी पक्ष द्वारा जान-बूझकर न्यायालय से कुछ लाभकारी आदेेश प्राप्त करने के लिए मिथ्या साक्ष्य दी गई है। ऐसी कार्यवाही शुरू करने के लिए अनुमान या संदेेश से उपर की प्रकृति को आधार होना चाहिऐ। ऐसे व्यक्ति द्वारा अपराध करने को स्पष्ट सबूत होना चाहिऐ क्योंकि मात्र संदेेह से मिथ्या साक्ष्य को आरोप नहीं लगाया जा सकता। इसके अलावा, अदालत को तथ्यों के आधार पर यह भी निर्धारित करना होगा कि क्या न्याय के हित में उस अपराध की जाँच

करना समीचीन है जो किया गया प्रतीत होता है।

13. वर्तमान मामले में, अधिकरण द्वारा तलब किऐ गऐ सभी दस्तावेज अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत नहीं किये गये थे। इसके अलावा, पंजीकृत डाक द्वारा भेजा गया कोई भी दस्तावेज सामान्य खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 27 के प्रावधानो और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के दृष्टांत (एफ) के मद्देनजर प्राप्तकर्त्ता द्वारा प्राप्त किया गया उपधारित माना जाता है, लेकिन प्रत्येक उपधारणा खंडनीय है। (देखेः हरिहर बनर्जी बनाम रामशशी रॉय ए आई आर 1918 पी सी 102, गुजरात विद्युत बोर्ड एवं अन्य बनाम आत्माराम सुगोमल पोस्तानी, ए आई आर 1989 एस सी 1433, शिमला विकास प्राधिकरण और अन्य बनाम संतोष शर्मा (श्रीमती) और अन्य 1997)) 2 एस सी सी 637; डॉ. सुनील कुमार शंभुदयाल गुप्ता और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य जे टी 2010 (12) एस सी 287)।

14. ऐसी तथ्यों परिस्थितियों में, अपीलार्थी को इस उपधारणा का खंडन करने और यह साबित करने के लिए साक्ष्य पेश करने हेतु समय दिया जाना चाहिऐ था कि उसे उक्त दस्तावेज प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि विरोधी पक्षों द्वारा आरोप लगाया गया था, और ऐसा करना उन कारणों से हम बाद में अभिलिखित करते, आवश्यक था।

15. अधिकरण ने बहुत जल्देबाजी में कार्यवाही की क्योंकि अधिकरण द्वारा उक्त कार्यवाही शुरू करने के लिए 15.11.2002 को हेतुक दर्शित को जारी किया गया था, 12.12.2002 की तारीख तय की गई और 19.12.2002 को मामले को निपटारा किया गया। अधिकरण यह समझने में विफल रहा कि आपराधिक अवमानना कार्यवाही प्रकृति में अर्ध आपराधिक है और किसी पक्ष की ओर से गलती, असावधानी या गलतफहमी से की गई कोई भी कार्यवाही अवमानना की श्रेणी में नहीं आती है। अवमानना कार्यवाही में, न्यायालय आरोप लगाने वालो के साथ-साथ आरोप के न्यायाधीश भी होते है। इसलिए, जहाँ तक संभव हो, न्यायाधिकरण को बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिऐ। निर्णय की त्रुटियों के लिए सभी छूट देते हुए। अस्पष्ट मामले में की गई कोई भी कार्यवाही अवमानना के कानून को अन्य उपायो के लिए कर्त्तव्य बनाने के लिए है, इसलिए पूरी तरह से अनुचित है और इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिऐ। कार्यवाही प्रकृति में अर्द्ध आपराधिक होने के कारण, आवश्यक सबूत को भार और मानक वैसे ही अपेक्षित है जैसे आपराधिक मामलों में अपेक्षित होते है। आरोपो को इस उद्देश्य के लिए बनाऐ गऐ वैधानिक नियमों के अनुसार तय किया जाना चाहिऐ और यह ध्यान में रखते हुए उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिऐ कि कथित अवमाननाकर्त्ता

संदेेह के लाभ को हकदार है। विधि मात्र संभावनाओं पर अवमानना कार्यवाही में कोई सजा देेने की अनुमति नहीं देेती है। न्यायालय कथित अवमाननाकर्त्ता को बिना किसी आधार के केवल अनुमानों और धारणाओं के आधार पर दण्डित नहीं कर सकती। (सहदेेव उर्फ सहदेव सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्यः (2010) 3 एस सी सी 705) देखे।

16. कहने की आवश्यकता नहीं है कि अवमानना की कार्यवाही अर्द्ध आपराधिक प्रकृति की होने के कारण ऐसी कार्यवाही में लागू नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया को सख्ती से पालन करना आवश्यक है। ऐल. पी. मिश्रा (डॉ) नाम उत्तर प्रदेेश राज्य ए आई आर 1998 एस सी 3337 में, इस न्यायालय ने वैधानिक नियमों के मुद्दे को पालन करते हुए निम्नानुसार धारित किया किः

> ".....हमारी राय है कि न्यायालय ने आपेक्षित आदेेश पारित करते समय विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया था। यह सच है कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 अपने में समाहित शक्तियों और क्षेत्राधिकार को उपयोग कर सकता है लेकिन ऐसे क्षेत्राधिकार को प्रयोग विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया जाना चाहिऐ।"

17. थ्री चीयर्स ऐंटरटेनमेंट प्रा. लिमिटेड बनाम सी.ई.एस.सी. लिमिटेड ए आई आर 2009 एस सी 735. और सहदेव (सुप्रा), इस न्यायालय ने एक समान दृष्टिकोण दोहराया कि अवमानना कार्यवाही में न्यायालय को विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही पूरी कर विचारण को निष्कर्ष निकालना चाहिये।

18. वर्तमान मामले को 1992 के नियमों के तहत निपटाया जाना चाहिऐ। उपरोक्त नियम निम्नलिखित प्रक्रिया प्रदान करते हैं।

"नियम 7. कार्यवाही की शुरूआत"

(i) .....

(ii) इन नियमों के अनुसार आपराधिक अवमानना के लिए प्रत्येक याचिका के अलावा प्रत्येक जानकारी, रजिस्ट्रार द्वारा छानबीन किये जाने पर इस अधिनियिम के अधीन आपराधिक अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रशासनिक पक्ष की और से प्रधान बैंच के मामले में अध्यक्ष और अन्य बैंच के मामले में संबंधित उपाध्यक्ष या उनके द्वारा इस उद्देश्य से नामित किये गये अन्य सदस्यों के समक्ष प्रथमतया रखी जायेगी और यदि वह अधिनियम के तहत कार्यवाही करना समीचीन और उचित समझते है, तो उक्त याचिका या सूचना रजिस्ट्री में पंजीकृत और क्रमांकित किया जायेगा और प्रारंभिक सुनवाई के लिए बैंच के समक्ष रखा जायेगा।

(iii) जब स्वतं प्रसंज्ञान लिया जाता है तो कथित अवमानना को गठन करने वाले तथ्यों को विवरण और विरचित आरोपो की प्रति प्रारंभिक सुनवाई के लिए रखने से पहले रजिस्ट्रार द्वारा तैयार और हस्ताक्षरित की जायेगी।

नियम 13. मुकदमे की सुनवाई एवं विचारणः-

(अ) .....

(ब) .....

(स) प्रतिवादी को लगाए गऐ आरोप की एक प्रति दी जाऐगी, जिसे प्रतिवादी को पढ़कर सुनाया और समझाया जायेगा। इसके बाद अधिकरण उसके अभिकथन, यदि कोई हो, दर्ज करेगा।

(द) .....

(य) .....

नियम 15. ट्रायल के लिए प्रक्रियाः-

(i) अधिनियम और इन नियमों में अन्यथा उपबन्धित किये जाने के अलावा, संहिता के अध्याय XXI के तहत संक्षिप्त विचरणों के लिए निर्धारित प्रक्रिया को यथासंभव अवमानना के मामले के परीक्षण में पालन किया जायेगा

(ii) .....

(iii) .....

(iv) .....

(v) .....

19. वर्तमान मामले में, माना जाता है कि 1992 के नियमों के तहत यहाँ निर्धारित प्रक्रिया को पालन नहीं किया गया है। आपराधिक अवमानना को मामला न तो दर्ज किया गया है और ना ही अलग से क्रमांकित किया गया है। नियमों के तहत अनिवार्य रूप से अधिकरण द्वारा कभी भी कोई आरोप तय नहीं किया गया था। अतः अपीलार्थी को इसकी प्रति उपलब्ध करवाने को प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए, अवमानना की कार्यवाही उपरोक्त नियमों के अनुरूप बिल्कुल भी सम्पन्न नहीं हुई थी। सहदेव (पूर्व) में इस न्यायालय द्वारा ऐसी समान स्थिति से निपटते समय धारित किया गया थाः

> "प्रत्येक वैधानिक प्रावधान को सख्ती से पालन आवश्यक है, इस कारण से की विधान संबंधित व्यक्तियों के पक्ष में अधिकार सृजित करता है। आक्षेपित निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्घांतों को पालन न करने और वैधानिक नियम, 1952 के अनुपालन को सुनिश्चित नहीं करने के कारण हुआ। इस प्रकार,

मुकदमा स्वयं तात्विक प्रक्रियात्मक दोष से ग्रस्त था और दूषित हो गया था। जहाँ तक अवमानना कार्यवाही में अपीलार्थीओं की दोषसिद्धि का सवाल है, आक्षेपित निर्णय और आदेेश काे रद्द किया जा सकता है।"

20. सहदेव (सुप्रा) में निर्णय को आंकलन इस मामले पर संपूर्ण रूप से लागू होता है। वर्तमान मामला उपरोक्त निर्णय द्वारा स्पष्ट रूप से आच्छादित किया गया है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण द्वारा पारित आपत्ति प्रार्थना पत्र संख्या 715 of 2002 में पारित आक्षेपित निर्णय और आदेेश दिनांक 19.12.2002 रद्द किये जाने योग्य है। अपील स्वीकार की जाती है, अधिकरण के फैसले और आदेेश को रद्द कर दिया गया है, कोस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं।

अपील की अनुमति।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मीना गहलोत (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकर को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय को अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।